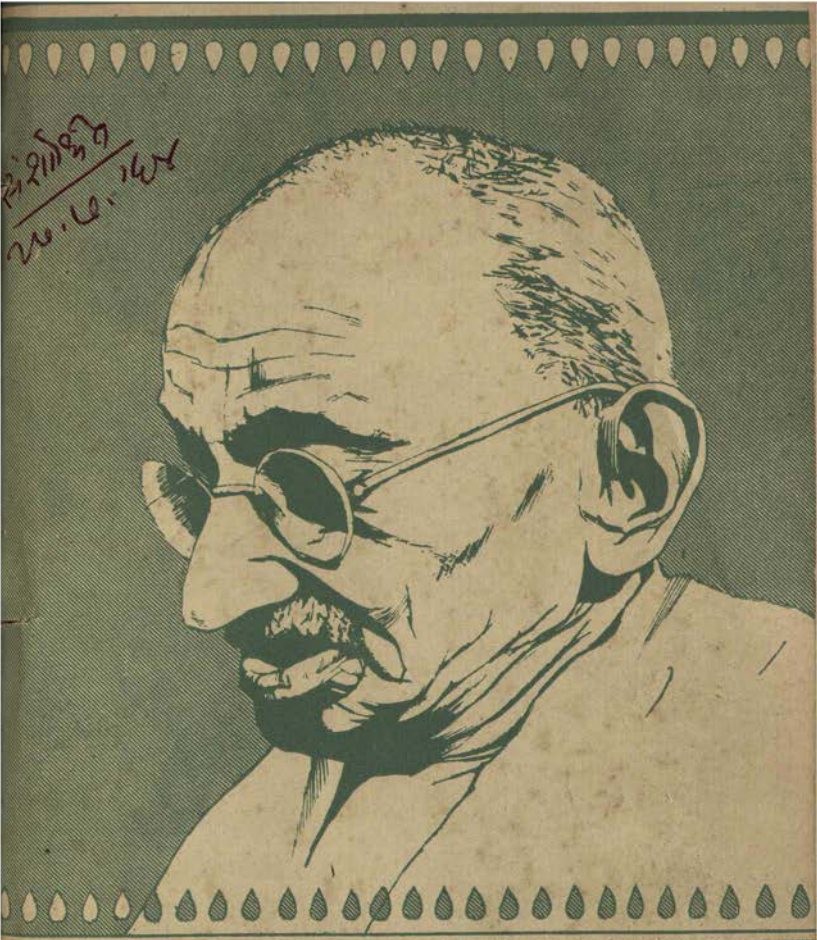

गांधी पुण्य-स्मरण

दादा धर्माधिकारी

गांधी-पुण्य-स्मरण

दादा धर्माधिकारी

सर्व - सेवा - संघ - प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी

प्रकाशक : मन्त्री, सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन,
राजघाट, वाराणसी
संस्करण पहला
प्रतियाँ : ३,०००; नवम्बर, १९६३
मुद्रक : विश्वनाथ भार्गव,
मनोहर प्रेस,
जतनबर, वाराणसी
मूल्य : ५० नये पैसे

Title : GANDHI-PUNYA-SMARAN
Author : Dada Dharmadhikari
Publisher : Secretary,
Sarva-Seva-Sangh,
Rajghat, Varanasi
Edition : First
Copies : 3,000; November, '63
Printer : V. N. Bhargava,
Manohar Press,
Jatanbar, Varanasi
Price : 0.50 n. P.

प्रकाशकीय

श्री दादा धर्माधिकारी की यह छोटी-सी पुस्तिका पाठकों के हाथों में पहुँच रही है। पूज्य बापू अथवा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का जीवन जितना सीधा-सरल था, उतना ही बहुमुखी और समग्र था। वे राष्ट्रमय थे और राष्ट्र गांधीमय था। उन पर शत-सहस्र व्यक्तियों ने अपनी श्रद्धा-सुमनांजलि अर्पित की है। उनको निरखकर लाखों के दृग पावन हुए हैं और हजारों की लेखनी गीली हुई है।

प्रतिवर्ष हमारे यहाँ पूज्य बापू की जयन्ती और वर्षी मनायी जाती है, मेलों का आयोजन होता है। ऐसे कतिपय प्रसंगों पर पूज्य दादा ने जो उद्‌बोधक और प्रेरक प्रवचन देश की जनता, रचनात्मक कार्यकर्ता और आसपास के साथियों को ध्यान में रखकर किये हैं, उनका यह छोटा-सा संकलन प्रकाशित हो रहा है।

दादा की हृदय को स्पर्श करनेवाली, तलस्पर्शी और सहज रमणीय शैली से हमारे वे पाठक भलीभाँति परिचित हैं, जिन्होंने उनके 'सर्वोदय-दर्शन', 'अहिंसक क्रान्ति की प्रक्रिया' आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया है।

●

अनुक्रम

१. गांधी-निर्दिष्ट मार्ग ५–९

पुच्छ प्रगति ५, हृदयासीन वास्तविक प्रतिनिधि ६, हिंसा से अहिंसा अनंतगुनी श्रेयस्कर ७, वीर की प्रतिष्ठा शस्त्र-निरपेक्ष शूरता ८, राष्ट्र का अजेय दुर्ग ९।

२. गांधी अमर है १०–१७

विचार-शुद्धि और सत्य-दर्शन १०, सत्य का वैज्ञानिक दर्शन १०, शुद्ध बुद्धि ही एकमेव प्रमाण ११, अनाग्रही बुद्धि १२, सारी पृथ्वी श्मशान-भूमि १२, सत्याग्रह की मर्यादा १४, गांधी की स्टेट्समैनशिप १६, गांधी अमर क्यों ? १६।

३. गांधी की विरासत १८–३४

मानव भगवान् की तरह अज्ञात १९, मानव केवल स्नेह का विषय १९, गांधी नहीं, उसके साधन का स्वीकार २१, व्यक्तित्व और विभूति में अन्तर २२, न्याय का आधार दण्ड २५, गांधी की व्यापक दृष्टि २६, निर्भीक मनुष्य में अहिंसा का उदय २८, शान्ति की बुनियाद : मृत्यु से अभय २९, निष्पक्ष पुरुषों से परस्पर प्रामाण्य ३०, गांधी पर उसके प्रतिपक्षी का भी विश्वास ३१, मानव का जीवनदायी तत्त्व : स्नेह ३२।

४. सज्जनता और वीरता का संरक्षण ... ३५–४१

अपराधों को प्रकट करने की शक्ति का अभाव ३५, आशा का केन्द्र : गांधी-परायण समुदाय ३७, शक्ति के स्रोत : गांधीजी के गुण ३८, अहिंसक शक्ति अविकसित क्यों ? ३९।

५. गांधी का सच्चा स्मारक ४२–५१

गांधी-सिद्धान्त की परीक्षा का अवसर ४२, आजादी से आराम अधिक पसंद ४२, आजादी की भावना का अभाव ४४, अखिल भारतीय नेताओं का अनुदय ४५, देश का क्या कोई मन भी है ? ४६, सभी नागरिकों के लिए दो मर्यादाएँ ४७, आध्यात्मिकता का लोप ४९, देश के लिए चुनौती ५०।

जहां तक राज्यकर्ताओं का संबंध है, उनकी नीति और प्रत्यक्ष व्यवहार से यही प्रतीत होता है कि उन्होंने प्रशासन के सुप्रबंध और आर्थिक उत्कर्ष के लिए गांधीजी की नीति, कार्यक्रम तथा योजनाओं को अप्रस्तुत ही नहीं, बल्कि अश्रेयस्कर माना है। सेना, पुलिस, निरीक्षण, प्रेक्षण, न्यायालय तथा कारागारों का खर्च और प्रपंच उत्तरोत्तर कम होने के बदले नित्य बढ़ रहा है। सत्ताधारी कांग्रेस-पक्ष संपूर्ण प्रामाणिकता के साथ यह कह सकता है कि उसने गांधीजी के मार्ग को समाज-व्यवहार के नियामक तत्त्व के नाते सम्पूर्ण रूप से कभी स्वीकार नहीं किया था, इसलिए आज उनकी नीति गांधीजी के प्रति या स्वयं अपने प्रति प्रवंचना या प्रतारणा की नहीं है।

पुच्छ प्रगति

इसके लिए हर सत्ताधारी पक्ष अपने समर्थन में गांधीजी के लेखों या ग्रंथों से प्रमाण उपस्थित कर सकता है। जब जब लोक-समुदाय का प्रक्षोभ अनियंत्रित आसुरी हिंसा में प्रस्फुटित हुआ, तब तब गांधीजी ने शासन द्वारा विधान-विहित बलप्रयोग का एकांतिक निषेध नहीं किया था। उनसे कई बार राष्ट्र-रक्षण के बारे में प्रश्न पूछे गये, तब कुछ प्रसंगों में उन्होंने यह भी कहा कि भारत ने स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए अहिंसात्मक नीति का एक मर्यादित अवधि तक स्वीकार किया है, मैं नहीं जानता कि स्वतंत्रता के संरक्षण के लिए भी भारत उसीका अवलंबन करेगा या नहीं। इस प्रकार के उनके वाक्यों का

आधार तो लिया ही जा सकता है। कहा जाता है कि कश्मीर-प्रकरण में भारत-सरकार ने गांधीजी की अनुज्ञा से ही अपनी सेना भेजी थी। दिल्ली और अन्य शहरों में जब मुसलमानों ~~की जमात~~ के साथ अत्याचारी व्यवहार होने लगा, तब गांधीजी ने एकआध प्रसंग पर यह भी कहा कि ऐसे समय पर सरकार को या तो अपनी पूरी शक्ति से काम लेना चाहिए या फिर राज्य-संन्यास ही ले लेना चाहिए। इस प्रकार के प्रसंगोपात्त उद्‌गारों का हवाला सचाई के साथ दिया जा सकता है।

गांधीजी ने कुछ अपवादात्मक परिस्थितियों में तात्कालिक विवशता के कारण विधान-सम्मत हिंसा के मर्यादित प्रयोग के लिए भले ही अनुमति दी हो, फिर भी कुल मिलाकर उनका यह उद्‌देश्य और प्रयत्न रहा कि राज्य-प्रबंध और प्रशासन में भी हिंसा की मात्रा यथाशीघ्र कम होती चली जाय। जो लोग गांधीजी की अहिंसा के तत्त्वज्ञान में विश्वास नहीं करते, वे भी यह तो मानते और कहते हैं कि सेना, पुलिस, जेलखानों और अदालतों का खर्च जिस अनुपात में कम होगा, उसी अनुपात में नागरिक जीवन में सभ्यता के संस्कारों का विकास होगा। इस दृष्टि से भी इन बारह वर्षों में राजनैतिक जीवन में हमारा जो मार्ग-क्रमण हुआ है, उसे पुच्छ-प्रगति ही कहना होगा।

हृदयासीन वास्तविक प्रतिनिधि

इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि सत्तावादी पक्षों ने सत्ता की प्राप्ति और संरक्षण के लिए वोट जुटाने की जितनी फिक्र की, उतनी फिक्र लोकमत की प्राणप्रतिष्ठा और उसका आदर करने की नहीं की। गांधीजी ने गरीबी और बेकारी दूर

करने के लिए जिन व्यवहारसुलभ तरीकों का निर्देश किया, उनका स्वीकार भी नहीं किया गया। इसलिए किसान-मजदूर तथा दूसरे परिस्थिति-पीड़ित साधारण नागरिकों के मन में लोकराज्य के विषय में अभिमान और विश्वास पैदा नहीं हो सका। गांधीजी भारतवासियों के विधिवत् निर्वाचित प्रतिनिधि नहीं थे। वे भारतवासियों के हृदयासीन वास्तविक प्रतिनिधि थे। हमें अन्तर्मुख होकर यह सोचना चाहिए कि औपचारिक और वास्तविक प्रतिनिधित्व में यह जो अन्तर है, उसे पाटने का प्रयास हमने लोकतंत्र के क्षेत्र में कहाँ तक किया है ?

दूसरी तरफ वे लोग हैं, जो लोकमत और लोकहित के नाम पर आये दिन सरकार का विरोध करते हैं और नानाविध स्वरूप के सत्याग्रहों का प्रयोग करते हैं। वे अपनी नीति और आचरण के समर्थन में प्रायः गांधीजी का/वाक्य उद्धृत करते हैं कि- "कायरता से हिंसा बेहतर है।" इसे पढ़कर यह नहीं कहा जा सकता कि गांधीजी ने किसी प्रसंग में आपाततः यह वाक्य कहा था। उस वाक्य में भी अहिंसा का मूलभूत सिद्धांत ग्रथित है। इस दृष्टि से उसे सत्याग्रह की प्रक्रिया का सूत्र-वाक्य भी कह सकते हैं। परन्तु उसमें हिंसा की प्रशस्ति नहीं है, भीरुता का धिक्कार है। जिस प्रकार हिंसा में क्रूरता, निर्घृणता और द्वेष हो सकता है, उसी प्रकार अहिंसा में कायरता, शिथिलता, जड़ता और मुर्दनी हो सकती है।

हिंसा से अहिंसा अनंतगुनी श्रेयस्कर

जिस हिंसा में वैरवृत्ति, क्रूरता और हृदय-हीनता का अभाव होता है, उसमें हिंसा की अपेक्षा वीरश्री का अंश अधिक होता

है। उसके प्रयोग में निरंतर यह प्रामाणिक प्रयत्न होता है कि अपने लिए संकट तथा खतरा अधिक से अधिक हो और प्रतिपक्षी की हानि तथा हिंसा कम-से-कम हो। उन्होंने ऐसी वीरश्री-युक्त हिंसा को पुरुषार्थहीन निःसत्त्व अहिंसा से श्रेयस्कर बतलाया था। अभिप्राय यह है कि शस्त्र-प्रयोग और रणक्षेत्र में जो निर्भयता और वीरता होती है, कम से कम उतनी तो अहिंसात्मक आचरण में होनी ही चाहिए। क्योंकि उसके बाद उनका दूसरा वाक्य यह है कि "हिंसा से अहिंसा अनंतगुनी श्रेयस्कर है।" तात्पर्य यह कि जिस हिंसा में उत्सर्ग और बलिदान का माद्दा है, उस हिंसा से भी द्वेष-रहित और प्रेम-प्रेरित अहिंसक प्रतीकार कहीं अधिक श्रेयस्कर है; क्योंकि वीर की हिंसा में भी किसी न किसी अंश में शस्त्र-निर्भरता होती है।

वीर की प्रतिष्ठा शस्त्र-निरपेक्ष शूरता

सशस्त्र वीरता तभी परिनिष्ठित मानी जाती है, जब कि वह निःशस्त्र होने पर भी हतवीर्य नहीं होती, तेजोहीन नहीं होती। सशस्त्र वीरता की अंतिम प्रतिष्ठा शस्त्र-निरपेक्ष शूरता में है। शस्त्र-निरपेक्ष वीरता आत्मनिर्भर और आत्मतंत्र होती है। अतएव हमें अपना कदम कायरता से सशस्त्र वीरता की दिशा में बढ़ाना चाहिए। निःशस्त्र प्रतिरोध भी हिंसक हो सकता है। निःशस्त्र प्रतिरोध भी उतना ही निर्दय, सहानुभूतिशून्य, कुटिल तथा द्वेषयुक्त हो सकता है, जितना कि सशस्त्र प्रतिरोध। उस अवस्था में उस प्रतिरोध को कायरता से बेहतर समझकर उसे उपादेय तथा प्रशस्त मानना बहुत बड़ा अनर्थ होगा। जहाँ लोग अत्यंत अल्प संख्या में होते हुए भी साधन और शौर्य के

साथ अपनी अपेक्षा अधिक संख्याबल तथा शस्त्रबल से सुसज्जित प्रतिपक्षियों का मुकाबला शस्त्रास्त्रों से करते हैं, वहाँ उन्हें शस्त्र-बल की बनिस्बत आत्मबल का ही भरोसा अधिक करना पड़ता है। ऐसी विशेष परिस्थिति में गांधीजी ने कहा था कि उन अल्पसंख्यक और अल्प शस्त्र-संपन्न लोगों का हिंसक प्रतिरोध भी अहिंसक प्रतिरोध के निकट का पर्याय माना जायगा।

राष्ट्र का अजेय दुर्ग

आज संसार के अधिकांश देशों के लिए सशस्त्र संरक्षण प्रायः अव्यवहार्य हो गया है। ऐसी परिस्थिति में यह कहना कि पुरुषार्थहीन निष्क्रिय अहिंसा से हिंसा अधिक श्रेयस्कर है, तो उससे लोगों में आत्म-प्रत्यय और वीर-वृत्ति का विकास नहीं होगा। जब आत्म-प्रत्ययहीन हिंसा असफल होती है, तब उसका परिणाम लोगों को हतबल बनाने में और सारे राष्ट्र के आत्म-नाश में होता है। इस दृष्टि से इस अवसर पर हम सबका यही परम कर्तव्य है कि भारतवर्ष के निवासियों में स्वाभिमान, स्वतंत्रता तथा आत्म-मर्यादा के रक्षणार्थ बड़े-से-बड़े त्याग और बलिदान के लिए तत्पर रहने की भावना का विकास किया जाय। नागरिकों की पारस्परिकता और एकात्मभाव राष्ट्र का अजेय दुर्ग है। इसके लिए गांधीजी के बतलाये हुए अहिंसात्मक पुरुषार्थ के सिवा दूसरा कोई कल्याणमार्ग नहीं है। विद्यार्थियों को, मजदूरों को, राजनैतिक दलों को और अन्य नागरिकों को अपने सभी आंदोलनों में उस मार्ग की मर्यादाओं का सतत भान रखना चाहिए।

वाराणसी
३०-१-'६०

गांधी अमर है : २ :

विचार-शुद्धि और सत्य-दर्शन

मूलभूत विचार शुद्ध होना चाहिए। चित्त में किसी प्रकार की ग्रन्थि होने पर हम समस्या को नहीं देख सकते। बैंगलोर में हम एक बार लालबाग देखने गये। रात के वक्त काफी रोशनी थी। हमारे साथ और एक भाई थे, वे कहने लगे कि "वृन्दावन की रोशनी इससे अच्छी है।" इसे प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कह सकते। वृन्दावन में ही वृन्दावन की रोशनी देख सकते हैं। तुलना मनुष्य को वस्तु से विमुख कर देती है। समस्या के पास अपना विचार लेकर जाने से हम मूल समस्या को देख नहीं सकते। केवल अपने विचार को ही देखते रहेंगे।

बुद्धि और चित्त किसी विभूति से मर्यादित नहीं होने चाहिए। अध्ययन करनेवाले व्यक्ति का चित्त नम्र होना चाहिए। चित्त में पक्ष होने पर विनय नहीं होता। हमारे देश में एक 'दर्शन' नाम की वस्तु है। हमारे सामने जो चीज है, उसे हम नहीं देखते। बल्कि दूसरी चीजों को ध्यान में रखते हैं। अर्थात् स्वयं अपनी आँखों के सामने की चीज नहीं देखते।

सत्य का वैज्ञानिक दर्शन

केवल अपनी भावना से देखने पर दर्शन वैज्ञानिक नहीं होता। सत्यान्वेषी का चित्त खुला होना चाहिए। याने विनय-युक्त होना चाहिए। सत्य की उपस्थिति में पक्ष नहीं रह सकता।

इसलिए गांधीजी ने कहा था "ईश्वर ही सत्य है", लेकिन बाद में कहा कि "सत्य ही ईश्वर है।" ईश्वर की कल्पना में जितना अन्तर होता है, उतना सत्य की कल्पना में नहीं होता। ईश्वर की कल्पना उपासना है, सत्य की कल्पना वस्तुनिष्ठ है। ईश्वर की मूर्ति उपासना की है, उपासना के लिए उसे माना जाता है। लेकिन सत्य को मानने या न मानने का सवाल ही नहीं है।

शुद्ध बुद्धि ही एकमेव प्रमाण

एक निरीश्वरवादी यह कह सकता है कि "मैं ईश्वर को नहीं मानता हूँ", लेकिन वह सत्य को मानता है। सत्य सर्वमान्य है। उसके दर्शन में अन्तर हो सकता है, लेकिन उसकी मान्यता में अन्तर नहीं हो सकता। बौद्धिक पदार्थों में जितनी वस्तुनिष्ठा होती है, उतनी सत्य में भी है। सत्यनिष्ठ दर्शन वस्तुनिष्ठ दर्शन है। इसको आध्यात्मिक कहते हैं। सत्य का दर्शन भावनात्मक नहीं है, वस्तुनिष्ठ है। गुलाब का रंग देखने के लिए हमारी आँखों पर उस रंग के ग्लासेस (चश्मा) न होने चाहिए, जिससे उस फूल का रंग देख सकें। रंगवाला चश्मा लगाने पर उसका रंग भी बदलता हुआ दीखेगा। इस ढंग से नहीं होना चाहिए। यानी चित्त में कोई रंग नहीं होना चाहिए। गांधीजी के दर्शन में कोई रंग नहीं है। उन्होंने सत्य के दर्शन को अपना माना है। उन्होंने ऐसा नहीं माना कि मेरा दर्शन और सत्य का दर्शन अलग है। वस्तुनिष्ठ दर्शन वह है, जिसमें चित्त विकार और ग्रंथियों से मुक्त होता है। विचार के लिए शुद्ध बुद्धि प्रमाण है। सम्यक् विचार करने का साधन है बुद्धि। वह विकारमुक्त और ग्रंथि-मुक्त होनी चाहिए।

अनाग्रही बुद्धि

गांधीजी ने यदि हमें कोई संस्कार दिया हो, तो वह इतना ही है कि "आँख साफ रखें।" जो वस्तु जैसी है, वह वैसी ही दिखाई देनी चाहिए। जिस तरह गांधी और विनोबा एक चीज देखते हैं, वैसी ही यदि वह हमें भी दिखाई दे, तो वह सत्य नहीं है। किसी वस्तु को यथार्थ रूप से देखने का नाम मूलभूत दृष्टि है। उसमें हमारी अपनी कोई ग्रन्थि न हो। हम केवल उसे समझने के लिए तैयार रहें, इसे अनाग्रही बुद्धि कहते हैं। बुद्धि में अच्छे-बुरे दोनों तरह के दोष न होने चाहिए। इन दोनों के बिना बुद्धि में जब एक स्थिति आती है, तब उसे जिज्ञासु बुद्धि कहते हैं। हमारी बुद्धि में वस्तु-दर्शन की शक्ति होनी चाहिए। यह न होने पर सर्वोदय भी एक सम्प्रदाय बन जाता है। यह नहीं होना चाहिए। इसलिए उस दृष्टि से हमें सोचना चाहिए।

सारी पृथ्वी श्मशान-भूमि

हमारे सामने अगर कोई अन्तर्विरोध (Contradiction) न हो, तो फिर विचार ही करने की जरूरत नहीं है। मनुष्य मरता है, लेकिन मरना नहीं चाहता। हमारे सामने जितनी समस्याएँ हैं, उन सबका मूल क्या है? ये सारी प्रवृत्तियाँ क्यों हैं? मनुष्य चाहता है जीवन। मृत्यु तथ्य (Fact) है और जीवन सिद्धांत (Principle) है। यहाँ से एक अन्तर्द्वंद्व (Conflict) शुरू होता है। ये सारी संस्थाएँ किसलिए? मृत्यु के बीच जीवन का जो प्रयास है, यही इन सबका उत्तर है।

बाइबिल में आदम से कहा गया है कि 'तू मिट्टी है

और मिट्टी में मिल जाता है', (Dust thou art, to dust thou returnest) इसे एक शाप माना गया है। क्यों ? यह तो एक तथ्य (Fact) है, इसको शाप मानने की क्या आवश्यकता है ? जिस वस्तु से वह बना, अंत में उसमें ही तो वह मिल जायगा। इसको शाप इसलिए माना गया कि आदम चेतन होने पर भी अंत में जड़ में मिल जायगा। याने चेतन जड़ में मिल जायगा। इसीके लिए कवि ने ऐसा कहा है कि यह आत्मा के लिए नहीं कहा गया है।

इन्दुमती के मर जाने पर अज विलाप करता है तब कालिदास उसे समझाता है कि "मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्"। राम ने भी दशरथ की मृत्यु पर विलाप किया था। यह सब क्यों होता है ? यह नैतिकता (Morality) का प्राणभूत प्रश्न है। यदि मृत्यु जीवन की वास्तविकता है, तो उसके लिए अरुचि और शोक क्यों होना चाहिए ? आप शिक्षण और संस्कार से मृत्यु के लिए रुचि पैदा करना चाहते हैं। मृत्यु का भय स्वाभाविक चीज है। भीरुत्व बिलकुल अलग चीज है। जैसे वीरता एक संस्कार है, वैसे ही भीरुत्व भी। मृत्यु से बचने की इच्छा करना एक संस्कार है। अब हमारे सामने सवाल आता है कि क्या भगवान् ने हमें मृत्यु दण्ड दिया है ? क्या यह पृथ्वी मृत्युलोक है ? मृत्युलोक में भी हमने श्मशान को अलग रखा है। असल में पूरी पृथ्वी ही एक श्मशान-भूमि है। इस पृथ्वी पर भी हमने श्मशान अलग बनाया है और उससे हम अलग रहना भी चाहते हैं।

एक बड़े समाजवादी से सवाल पूछा गया कि "बंदीगृह

की क्या जरूरत है ?" उन्होंने कहा : "आप क्या समझते हैं ? अधिक-से-अधिक मनुष्यों को जेलखाने के अन्दर रखने के लिए या अधिक-से-अधिक लोगों को उसके बाहर रखने के लिए ?" इस प्रति-प्रश्न का उन्होंने यह उत्तर दिया : "अधिक-से-अधिक लोगों को जेलखाने के बाहर रखने के लिए।" वैसे ही श्मशान-भूमि भी इसीलिए है कि उसमें कम-से-कम लोग रहें।

जब बकासुर के पास खाना बनकर जाने की बारी आयी, तो पाण्डवों में हरएक ने कहा कि "मैं जाऊँगा।" इसका मतलब यह है कि सभ्य पुरुष श्मशान-भूमि में स्वयं पहले जाने के लिए कहेगा।

बर्ट्रेण्ड रसेल ने अपनी एक किताब 'New Hopes for A Changing World' में लिखा है कि "अब डर यह है कि काले लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है और गोरे लोगों की संख्या कम होती जा रही है !" इसको पक्षपाती दृष्टिकोण (Partison Perspective) कहा जाता है। ~~मगर~~ विज्ञान में पक्षपात है।

सत्याग्रह की मर्यादा

गांधीजी ने सत्याग्रह की मर्यादा बताते हुए कहा कि जहाँ सन्देह होगा, वहाँ मैं अपने विरोध में पक्षपात करूँगा, तब मेरा संतुलन रहेगा। विनययुक्त बुद्धि संतुलित रहती है। सत्यनिष्ठ पहले अपने विरोध में विचार करता है। ~~वस्तुनिष्ठ विचार की आवश्यकता है।~~ उसका दृष्टिकोण (Perspective) यह होगा कि अगर जनसंख्या पर नियंत्रण करना हो, तो पहले स्वयं पर नियंत्रण शुरू करें, याने पहले अपने से शुरू करें। अगर मरने की आवश्यकता है, तो पहले 'मैं मरूँ' ~~ऐसा हो~~।

नेहरू का कहना है कि हमारा सीमा-विवाद एक जीवन का प्रश्न हो गया है। यह इसलिए है कि चीन और भारत को फैलने की जरूरत है, क्योंकि दोनों की जन-संख्या बढ़ रही है। महाराष्ट्र के एक विचारक ने कहा कि अगर मानवता को बढ़ाना है, तो निकृष्ट लोगों की संख्या मत बढ़ाइये।

जो अपने को अन्त में रखता है, वही उत्कृष्ट कहलाता है। घर में माँ उत्कृष्ट है। जो ऐसा कहता है कि अपनी संख्या बढ़ानी है और दूसरे की कम करनी है, वह सभ्य नहीं कहलाता। उत्कृष्टता का लक्षण है कि "मैं नहीं रहूँगा, तुम रहो।" प्रामाणिकता का लक्षण है विवेक (Discretion)। प्रामाणिकता हमेशा अपने विरोध में रहती है। यह है गांधी के आचरण। "दोष मुझमें है, सत्य-अहिंसा में दोष नहीं है, इसलिए मेरा काम नहीं बना" यह उनकी भूल थी। सिद्धान्त की कसौटी व्यवहार से होती है (The test of theory is practice)।

गांधीजी को हमने इसलिए एक व्यवहारी कहा कि उन्होंने अपने जीवन को ही एक प्रयोग की यज्ञशाला बना दिया था। उनका जीवन सत्य के प्रयोग (Experiment with truth) कहा गया है। यही मनस्विता कहलाती है। इसलिए उनके आचरण को नाम दिया गया है, 'कर्मयोग'। जिसके कर्म में एक संतुलन है, एक योग है, एक समत्व है उसको कर्मयोगी कहते हैं। इस व्यावहारिकता को गांधीजी ने अपने जीवन में दिखाया है। अनाचरणीय कर्म सिद्धान्त नहीं बन सकता। गांधी ने अपने जीवन में क्रान्ति के सिद्धान्तों को चरितार्थ बना दिया। ऐसा किसी दूसरे मनुष्य ने नहीं किया।

गांधी की स्टेट्समैनशिप

व्यवहारवाद एक अशुद्ध विचार है। सिद्धान्त का परीक्षण व्यवहार में होता है। गांधी, विनोबा, मार्क्स और लेनिन कहेंगे कि "हमारे प्रयत्न में कमी है, लेकिन विचार में कमी नहीं।" गलती मेरी है, दूसरों की नहीं। गलती को छोटी दिखलाने पर उसका सुधार नहीं कर सकते। सज्जनता का लक्षण है, अपने गुणों को छोटा करके दोषों को बड़ा दिखाना। पॉलिटिक्स में लॉबीइंग और सेल्समैनशिप दोनों हैं--राजनीति में दूसरों को अपने पक्ष में करने और अपने विचार दूसरों में उसने की वृत्ति होती है। अपनी तरफ लाने के लिए इन दोनों की जरूरत है। यह वस्तुगत भेद है। गांधीजी ने कहा है कि "मेरा काम है : spritualization of Politics, याने राजनीति में सच्चाई लाना चाहता हूँ।" राजनीति कहती है कि अपने को बड़ा कहो, जब कि नैतिकता कहती है कि अपने को छोटा कहो। गांधी ने कहा : "Truth is the greatest statesmanship. इसलिए मुझे लोग बहुत बड़ा स्टेट्समैन, राजनीतिज्ञ कहते हैं।"

गांधी अमर क्यों ?

"मनुष्य की मनुष्यता का उच्छेद शस्त्रास्त्र नहीं करते, लेकिन मनुष्य के भीतर की चीज करेगी" ऐसा अर्नाल्ड टॉइनबी ने कहा है। मनुष्य जब अपने नैतिक मूल्यों का नाश करता है तब स्वयं उसका नाश होता है।

क्या गांधी ने कोई अतीन्द्रिय शक्ति दिखलायी है ? ईसा में, मोहम्मद में या ऐसे प्रेषितों (Prophets) में कोई अतीन्द्रिय शक्ति दिखलायी ? क्या गांधी ने भी कभी कहा है कि "मैंने ईश्वर का

साक्षात्कार किया है ?'' नहीं, उन्होंने कोई दावा नहीं किया । वे साधारण मनुष्य के जीवन में सत्य का प्रवेश कराना चाहते थे । विज्ञान ने अपने सारे चमत्कार सर्वसुलभ कर दिये । यह विज्ञान की विशेषता है । उसी तरह गांधी अपने प्रयोगों को सामाजिक बनाना चाहते थे, यही उनकी विशेषता है । वे साधारण मनुष्य की उन्नति चाहते थे । सत्यमय जीवन ~~व्यवहार में लो,~~ यह संसार में रहनेवाले साधारण मनुष्य ~~का गुण~~ है । वह उन्होंने अपने व्यवहार और जीवन में दिखाया । इसलिए हरएक के मन में वे अमर ~~रहते~~ हैं ।

विश्वनीड़म्, बैंगलोर
५-५-'६०

गांधी की विरासत : ३ :

इन बारह वर्षों में शहादत के बारे में बहुत कुछ लिखा और सुना जा चुका है। हमारे देश में इन बारह वर्षों में जितने आंदोलन हुए, उन सबमें शहादत के कुछ मौके आये। हमारे देश में जो सरकार स्थापित हुई, प्रांतों में भी जहाँ कहीं जिस पक्ष की सरकार स्थापित हुई, कांग्रेस से लेकर कम्युनिस्ट पक्ष तक, सबको कभी-न-कभी गोली चलानी पड़ी; फिर चाहे वह सही चलानी पड़ी या गलत चलानी पड़ी हो। यह तो हरएक के मत और जाँच का विषय है। पर ये घटनाएँ अपने में सबके लिए खेद और दुःख का विषय हैं और सरकार तथा हम दोनों के लिए सिर्फ खेद ही नहीं, शर्म का विषय भी है। इस गोली कांड से कुछ भाइयों की, कुछ बहनों की मृत्यु हुई, जिनको हमने हुतात्मा कहा या हुतात्मा माना। परन्तु उससे जो वातावरण पैदा हुआ, वह शांति, बंधुत्व या स्नेह का नहीं था।

आज के अवसर पर हम सबको मिलकर कुछ आत्म-परीक्षण करना चाहिए। इसका कारण यह है कि महापुरुष और उसके साथियों में बहुत अंतर होता है। महापुरुष के साथ छोटे पुरुष भी महान् कार्य कर जाते हैं। कुछ व्यक्ति महान् होते हैं, कुछ प्रसंग महान् होते हैं। जब महान् प्रसंग होता है, तो छोटे आदमी भी बड़ा काम कर लेते हैं; और जब महापुरुष होता है, तब बहुत ओछे आदमी, बहुत छोटे कद के आदमी भी कभी-कभी बहुत पवित्र काम कर जाते हैं। परंतु महापुरुष के जाते ही

सब-का-सब भूल जाते हैं और प्रतिक्रिया पैदा होती है। प्रतिक्रिया कुछ ऐसी विपरीत होती है कि उस महापुरुष ने जो कुछ किया था, ठीक उससे उल्टे रास्ते उसके साथी चलने लगते हैं।

मानव भगवान् की तरह अज्ञात

पहला उदाहरण ईसा का है, जिसके साथ लोग गांधी की तुलना किया करते हैं। असल में तुलना अपने में बहुत विषम वस्तु है। एक पुरुष या एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति के साथ तुलना करते समय दोनों के विषय में कुछ-न-कुछ राय बनानी होती है, उनका परीक्षण करना होता है। आज के जमाने में यदि अहिंसा की सबसे बड़ी आवश्यकता है, तो वह यह है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का न्यायाधीश न बने। ईसा ने जो बहुत-सी आज्ञाएँ दीं, उनमें से एक आज्ञा यह थी : 'Judge not'—किसीके बारे में अपनी राय मत बनाओ। मनुष्य को तुम समझ नहीं सकते। अब तक बहुतों ने कोशिश की। कोई सफल नहीं हुआ! मनोवैज्ञानिकों ने, धर्मशास्त्रियों ने, आध्यात्मिक पुरुषों ने और ज्योतिषियों ने कोशिश की; लेकिन आज तक कोई सफल नहीं हुआ। मनुष्य अज्ञात ही है। उतना अज्ञात है, जितना उसको बनानेवाला भगवान् अज्ञात है। मनुष्य अज्ञात (Man Unknown) ही है।

मानव केवल स्नेह का विषय

अब तक मनुष्य हमारे लिए अज्ञात है। अज्ञातता के कारण ही वह हमारे स्नेह का विषय हो सकता है, न्याय का विषय नहीं। गांधी ने इस मर्यादा का स्वीकार किया था, हमने नहीं

किया। ईसा ने भी इस मर्यादा का स्वीकार किया था। जिन लोगों ने उसे सूली पर चढ़ाया, उनके विषय में उसने भगवान् से प्रार्थना की थी। लोगों को क्या आज्ञा दी थी? "अपने शत्रुओं से प्रेम करो। अपने दुश्मनों को भी प्यार करो।" इसे पालन करने का जब मौका आया, तब वह उसे नहीं भूला। जिन लोगों ने उसे सूली पर चढ़ाया, उन लोगों के विषय में उसने कहा कि "मेरे पिता, ये लोग नहीं जानते कि हम क्या कर रहे हैं। तू इन्हें माफ कर दे।" ईसा ने तो उनके लिए प्रार्थना की थी, लेकिन उसके सब अनुयायियों ने बीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण तक या मध्य शताब्दी तक यहूदियों का उत्पीड़न किया। वे कहीं नहीं रह सके। भगवान् के इस पाद-पीठ पर (God's foot-stool) उन लोगों के लिए कहीं जगह नहीं रही। जहाँ गये, वहाँ उनका उत्पीड़न हुआ। उत्पीड़न इसलिए हुआ कि उन पर एक कलंक लगा हुआ था। उन्होंने सारे संसार के उद्धार-कर्ता को सूली पर चढ़ाया था।

दुनिया में शायद ही दूसरा कोई ईसा जैसा हुतात्मा उससे पहले या उसके बाद हुआ हो। इतनी निर्दोष शहादत कि उसने अपने प्राणों की आहुति दे दी। इतने निर्दोष मनुष्य से भी क्रोध और प्रतिशोध का वातावरण पैदा हुआ। इसका कारण स्वयं ईसा नहीं था, उसके अनुयायी थे, उसके साथी थे। बहुत पहले ईसा की एक जीवनी किसीने लिखी है। कोई बीस-पचीस साल या इससे भी अधिक हो सकते हैं। उस जीवनी में से काका साहब ने एक वाक्य सुनाया था : Not knowing how to punish great men for their greatness

fate punished them with disciples—दैव नहीं जानता था कि महापुरुषों को उनकी महत्ता की क्या सजा दी जाय ? इसलिए उसने उनको सजा देने के लिए ये चेले दे दिये।

गांधी नहीं, उसके साधन का स्वीकार

महापुरुष के साथी बहुत साबित दिमाग के नहीं होते। किसी डाक्टर के दवाखाने में जाने पर साबित शरीरवाले ज्यादा आदमी नहीं दिखायी देते, क्योंकि वहाँ स्वस्थ शरीरवाले लोग बहुत कम संख्या में आते हैं। ईसा ने बाइबिल में एक वाक्य कहा है कि जो स्वस्थ होते हैं, नीरोग होते हैं, उनको वैद्य या डाक्टर की जरूरत नहीं होती : "They that be whole need not go to the physician." जिनके दिल-दिमाग साबित होते हैं, उन्हें किसी महापुरुष के पास जाकर उनके सान्निध्य में रहने की बहुत आवश्यकता नहीं होती। उसका प्रकाश काफी होता है, उसके व्यक्तित्व की सुगंध पर्याप्त होती है। महापुरुष की संगति की आवश्यकता तब होती है, जब मनुष्य के चित्त में और उसकी बुद्धि में किसी प्रकार की विकलता, अपंगता हो। गांधी के कुछ साथी ऐसे थे, जो राष्ट्र-भक्ति के कारण स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए जिस साधन का गांधी ने आविष्कार किया था, उसके प्रयोग के लिए सहयोगी हो गये। ये एक तरह के थे, जिन्होंने गांधी के साधन का तो स्वीकार किया था, पर गांधी का स्वीकार कभी नहीं किया। गांधी के पास एक साधन था, एक हथियार था।

इन्द्र ने दधीचि के वज्र का स्वीकार किया, उसके ऋषित्व का थोड़े ही स्वीकार किया था ? इन्द्र और वृत्र

का जब युद्ध हुआ, तब वृत्र उसको धर्मयुद्ध सिखाता है कि 'अरे, तू तो कपट कर रहा है। तू युद्ध में छल-प्रपंच करता है, तू पैंतरेबाजी कर रहा है। मैं राक्षस हूँ, असुर हूँ, मैं धर्मयुद्ध लड़ रहा हूँ।' लेकिन छल-प्रपंच करने के बाद भी इन्द्र सफल नहीं हुआ। फिर उसने एक तपस्वी के पास जाकर उसकी हड्डियाँ माँग लीं। हमने भी साढ़े तीन हाथ के शरीर के इस महापुरुष की मुट्ठीभर हड्डियाँ माँग लीं/ लेकिन इसका यह मतलब तो नहीं था कि हमने गांधी का स्वीकार किया था। गांधी इसे जानता था। इसलिए जब लार्ड रोनैल्डशे ने The Heart of Hindustan नामक किताब लिखी और उसमें यह लिखा कि गांधी एक ऐसा आदमी है कि इसके स्वराज्य में रेलगाड़ियाँ नहीं रहेंगी, इसके स्वराज्य में वकील नहीं होंगे, डाक्टर नहीं होंगे, इसके स्वराज्य में शहर नहीं होंगे और मिलें नहीं होंगी, इसके स्वराज्य में यंत्र नहीं होंगे—तो/जवाब लिखा, जिसे कि महादेवभाई ने 'इंडियन होमरूल' के नये संस्करण में दिया है। जवाब था : "हाँ, मेरा स्वराज्य तो वही स्वराज्य होगा। लेकिन कांग्रेस उस स्वराज्य के लिए नहीं लड़ रही है। इस समय कांग्रेस के प्रतिनिधि के नाते मैं जिस स्वराज्य के लिए लड़ रहा हूँ, वह वह स्वराज्य नहीं है, जिसका कि विवेचन मैंने अपनी 'हिंद-स्वराज्य' नामक पुस्तक में किया है। कांग्रेस वह स्वराज्य चाहती है, जो लार्ड रोनैल्डशे के देश में है।"

व्यक्तित्व और विभूति में अन्तर

तात्पर्य यह है कि कांग्रेस या गांधी के दूसरे साथियों ने—मैं अपने को भी उनमें शामिल करता हूँ—गांधी का स्वीकार नहीं

किया था। उनके दूसरे कुछ अनुयायी थे, जो सत्संग के लिए उनके साथ रहते थे। सत्संग के लिए रहनेवालों का गांधी के व्यक्तित्व से जितना मतलब था, उतना गांधी की विभूति से नहीं, उसकी Genius से नहीं था। व्यक्तित्व अलग चीज है, विभूति अलग चीज। शंकराचार्य का व्यक्तित्व अलग चीज है, शंकराचार्य की विभूति बिल्कुल ही अलग चीज है। शिवाजी महाराज का व्यक्तित्व अलग चीज है, शिवाजी महाराज की विभूति बिल्कुल अलग चीज है। लोकमान्य तिलक का व्यक्तित्व अलग चीज है, लोकमान्य तिलक की विभूति बिल्कुल अलग चीज है। विभूति में उस व्यक्ति की विशिष्ट प्रतिभा, बुद्धिमत्ता, उसका चारित्र्य और उसका विशिष्ट पुरुषार्थ होता है। इसके बाद उसके व्यक्तित्व की एक विशेषता होती है, जो उतने गुणवान् दूसरे व्यक्ति में नहीं होती। गांधी के जमाने में इस देश में गांधी से ज्यादा होशियार बैरिस्टर रहे होंगे। उसके जमाने में ~~इस देश में~~ उससे भी कहीं अधिक देश के लिए त्याग करनेवाले लोग रहे हैं। उसके जमाने में उससे भी ज्यादा जेलखाने में रहनेवाले लोग रहे हैं। उसके जमाने में उससे भी ज्यादा देर तक और उससे ज्यादा अच्छा सूत कातनेवाले लोग रहे। उसके जमाने में ऐसे भी व्यक्ति थे—जिनमें हमारी माँ, हमारी दादी और हमारी मौसियाँ थीं—जिन्होंने अपने जीवन में गांधी से कहीं अधिक उपवास किये थे। यह सब था। लेकिन इन सबका परिणाम नहीं हुआ और गांधी का परिणाम हुआ। इसका कारण उसकी विभूति थी। यह विभूति एक Phenomenon थी, एक प्राकृतिक घटना थी। इसकी मीमांसा नहीं हो

सकती। कोई इसका पृथक्करण और मीमांसा करने जायगा, पर ऐसा कौन करने जायेगा ? जो विभूतिमान नहीं है वह। फल-स्वरूप लोगों ने गांधी के प्रयोगों का विवेचन अपनी-अपनी दृष्टि से किया। उस महापुरुष के व्यक्तित्व का विवेचन करने में मनोविश्लेषण (Psycho-analysis) भी लगा दिया। अब केवल कमी इतनी रह गयी है कि अभी तक ईसा, ईसा की माँ और पांडवों की माँ कुंती का मनोविश्लेषण नहीं किया गया। जब हम विभूति का पृथक्करण करते हैं, तब हममें कुछ कमियाँ रह जाती हैं, उस कमी की तरफ मैं ध्यान आकृष्ट करता हूँ। गांधी के साथ रहनेवाले को गांधी का दिल नहीं मिला, गांधी के साथ रहनेवालों को गांधी का दिमाग नहीं मिला। गांधी के साथ रहनेवाले को गांधी की आँख नहीं मिली। इसलिए घटनाओं की जो प्रतिक्रिया गांधी पर होती थी, वह उन लोगों पर कभी न हो सकती थी। क्योंकि उनमें न गांधी का दिल था और न गांधी का दिमाग।

एक दफा मैं बहुत संकट में पड़ गया। उस समय मैंने विनोबा के पास जाकर कहा कि "मेरी जगह आप होते तो क्या होता ?" वे कहने लगे कि "आपकी जगह मैं होता तो विनोबा नहीं होता, मैं दादा धर्माधिकारी ही होता। और आपकी जगह मैं होता और विनोबा होता, तो मैं संकट में नहीं पड़ता। आप अभी जैसे संकट में पड़ गये हैं, ऐसे संकट में मैं नहीं पड़ता। फिर आप मुझसे कैसे पूछ रहे हैं कि आप मेरी जगह होते तो क्या करते ? आपका सोचने का तरीका, आपका दिल और आपका दिमाग अलग है। आपका तरीका अलग

है और मेरा तरीका अलग ! मेरे चित्त पर जो प्रतिक्रिया होगी, वह आपके हृदय पर नहीं हो सकती।" बहुधा सत्संग के लिए मनुष्य हमेशा व्यक्तिगत पारमार्थिक लाभ की दृष्टि से जाता है। इसमें भी अगर वह आध्यात्मिक वृत्तिवाला हो, तो ज्ञानी और ब्रह्मज्ञानी बन सकता है। लेकिन जो भक्त ईश्वरस्वरूप विष्णु-स्वरूप बन जाता है, वह सारूप्य और सायुज्य मिल जाने के बाद भी जगत् का कर्ता और लक्ष्मी का पति कभी नहीं बनता। उसी प्रकार गांधी और हममें भी एक अंतर रह गया। फलस्वरूप गांधी की शहादत, उसके जीवन की आहुति से इस देश में परस्पर सद्भाव और स्नेह का जो वातावरण पैदा होना चाहिए था, वह नहीं हो सका। इसकी जड़ में एक कारण है। थोड़े में मैं यहाँ उसका उल्लेख करता हूँ।

न्याय का आधार दण्ड

गांधी के जितने साथी हैं, उनका आज भी दंड में अधिक विश्वास है। दुर्भाग्य से न्याय का आधार दंड है। उसका प्रतीक तो तराजू है, लेकिन उसका आधार दंड है। जब गांधी की हत्या हुई, तब हत्या के लिए जो जिम्मेवार था या उसके लिए जो निमित्त बना, उसके विषय में गांधी के मन में करुणा पैदा हो सकती थी। हमें इसका मौका नहीं मिला। लेकिन जैसे ईसा प्रार्थना कर सकता था, वैसे वह भी शायद प्रार्थना कर सकता था। हम तो वहाँ नहीं थे, हमें ठीक पता भी नहीं है। लेकिन ऐसा सुनते हैं कि विनोबा के पास अकेले में एक आदमी पहुँच गया, जिसने उनसे कहा कि "आप जानते हैं कि मैं आपकी जान लेने आया हूँ।" उन्होंने उससे कहा कि "भगवान् अनंत

रूप लिया करता है। हो सकता है कि वह इस वक्त तुम्हारे ही रूप में आया हो।" मैं समझता हूँ कि गांधी के चित्त पर इससे कोई अलग प्रतिक्रिया नहीं होती। लेकिन हमारे चित्त पर वही प्रतिक्रिया है, जो ईसा की फाँसी के बाद दुनियाभर के चित्त पर हुई थी। आज दुनियाभर के किसी भी देश से फाँसी की सजा रद्द करने के विषय में पूछने पर कम्युनिस्ट देशों के लोग सबसे पहले कहेंगे कि फाँसी की सजा रद्द होनी चाहिए। यूरोप और अमेरिका के देश भी कहेंगे कि फाँसी की सजा रद्द होनी चाहिए। लेकिन क्या वे यह कहेंगे कि उसकी फाँसी की सजा भी रद कर दी जाय, जिसने कि कम्युनिज्म का विरोध किया हो? क्या उसकी भी फाँसी की सजा रद होनी चाहिए, जिसने अमेरिका के अध्यक्ष का या इंग्लैंड के राजा या रानी की हत्या करने का प्रयत्न किया है? तब सब एक आवाज से कहेंगे कि 'नहीं होनी चाहिए।'

गांधी की व्यापक दृष्टि

गांधी के मन में यह था कि जो मेरी आँख से सत्य नहीं देखता, जिसका मत मुझसे भिन्न है वह मनुष्य अगर अपने मत के अनुसार आचरण करता है, तो वह दंड का पात्र नहीं है। क्योंकि वह मानता था कि चाहे मैं अकेला एक तरफ ओर सारी दुनिया एक तरफ हो, तब भी जो चीज मुझे सत्य मालूम होती है, उसके लिए सजा भुगतने के लिए मैं तैयार रहूँगा; लेकिन मैं सत्य से नहीं डिगूंगा। अपने लिए वह हमेशा यह कहता था। जब गांधी ने सन् १९२० में कलकत्ते की स्पेशल कांग्रेस में असहयोग (Non-Co-operation) की अपनी योजना और

प्रस्ताव रखा, उस वक्त उसका समर्थन करनेवाले कोई नहीं थे। उस कांग्रेस के अध्यक्ष लालाजी कुछ असमंजस में पड़ गये थे। उनके चित्त में वा-नवा थी। ऐसे वक्त इस आदमी ने बुलंद आवाज में कहा कि अगर आप लोग इसे गलत समझते हैं, तो इसका स्वीकार न कीजिये, मैं दूसरा व्यासपीठ खोजूँगा (I shall seek another platform)। जब उससे यह पूछा गया कि किसी दिन भारत ही तुम्हारी बात छोड़ देगा, तो क्या करोगे? तो उसने कहा कि जी देश मानेगा, उस देश की सेवा के लिए चला जाऊँगा। मेरा धर्म भौगोलिक मर्यादाएँ, भौगोलिक सीमाएँ नहीं जानता। यह एक व्यापक दृष्टि थी। यह व्यापक दृष्टि आज कहाँ है?

एक मित्र हमें एक किस्सा सुना रहे थे। वह किसी प्रांत में प्रदर्शनी देखने गये। वहाँ उस प्रान्त का नक्शा था। उस पर लिखा हुआ था कि **'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'** मैंने उनसे पूछा कि स्वतंत्रता से पहले आप अपने प्रांत का नक्शा रखकर ऐसा लिखते, तो क्या वह भारतवर्ष का नक्शा होता? आपकी यह जननी जन्मभूमि तो पहले इतनी बड़ी थी, जितना कि भारतवर्ष है और अब आपके नाप की जननी जन्मभूमि बन गयी है। आप जितने बौने हैं, आपका दिल और बुद्धि जितनी संकीर्ण है, उतनी ही आपकी जन्मभूमि भी संकीर्ण होती चली जा रही है। फलस्वरूप जितनी आहुतियाँ होती हैं, उन निर्दोष आहुतियों से भी इस देश में क्रोध और परस्पर द्वेष का वातावरण बढ़ता चला जा रहा है। इंग्लैण्ड के लिए तो स्नेह है, क्योंकि उससे अब सम्बन्ध नहीं है! अब वह शत्रु भी नहीं है

और मित्र भी नहीं, अमित्र है और अशत्रु है। लेकिन जिससे सम्बन्ध है तथा जो नजदीक का है, वह या तो मित्र है या शत्रु। अब हमारे शत्रु ~~इस देश~~ से बाहर नहीं रहे हैं। प्रायः सब पड़ोसी हमारे दुश्मन बन गये हैं। हम अपने आपसे पूछते हैं कि क्या यह व्यक्ति इसलिए मरा होगा? क्या इसके जीवन का उत्सर्ग इसलिए हुआ होगा?

निर्भीक मनुष्य में अहिंसा का उदय

गांधी ने हमसे तीन बातें कही थीं कि मनुष्य मृत्यु का भय छोड़ दे। जब तक वह मृत्यु का भय नहीं छोड़ता, तब तक उसमें अहिंसा का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता, अहिंसा का उदय नहीं हो सकता। लड़ाई में जाने से डरनेवाले व्यक्ति में कभी अहिंसा की पात्रता नहीं हो सकती। वह लड़ाई में इसलिए नहीं जाता कि वहाँ मरना पड़ता है। मरने के डर से लड़ाई से भागनेवाला कायर है। कायर आदमी कभी अहिंसक नहीं हो सकता। उसने पहली चीज हमें यह सिखायी कि कायरता से हिंसा ज्यादा श्रेयस्कर है। कायर बनना मनुष्य के लिए सबसे हीन चीज है, निकृष्ट चीज है। मनुष्यता की जितनी हानि कायरता में है, उतनी किसी में नहीं। लेकिन हमने यह सोचा कि मरण का भय हमें न हो, पर जब तक वह दूसरों को है, तब तक हम उसका (मरण के भय का) उपयोग करें। मैं स्वयं मरने से नहीं डरता, लेकिन याद रख, तू अगर अहिंसा के खिलाफ कुछ करेगा, तो तुझे प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे, क्योंकि तू मृत्यु से डरता है। समाज में दूसरे व्यक्तियों में जो मृत्यु का भय है, ~~उसका कारण~~ दंड-शक्ति का आधार है/ उसकी

बुनियादों को हम समाज से अभी तक नहीं उखाड़ सके हैं। मैंने यहाँ जो 'हम' का निर्देश किया, उसमें राज्य की ओर संकेत नहीं है और न उसमें शासन-कर्ता पुलिस और फौज की ओर संकेत है। इस 'हम' का तात्पर्य साधारण नागरिक है। उसमें सबके साथ मेरा भी समावेश है। हम सब ऐसा मानते हैं कि वह हमारा 'राष्ट्र-पिता' था। उसने तो शांति की बुनियाद मरण से अभय माना है।

शान्ति की बुनियाद : मृत्यु से अभय

समाज में साधारण मनुष्य को जो मृत्यु का डर है, उस पर हमने अभी तक अपने सारे सामाजिक व्यवहार का आधार रखा है। गांधी की शहादत से अगर इस देश को कुछ सीखना है, तो यह मृत्यु का भय छोड़ दे।

कुछ दिन पूर्व विदेश से यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय युद्धविरोधक समिति (War Resisters' International) के लोग आये थे। उनमें से कुछ लोग सारे देश में घूमे। मदुराई में वे सब इकट्ठे हुए। उन लोगों ने कहा : "आपके देश में गांधी था, लेकिन अब तो वह कहीं दिखाई नहीं देता। अब हम उसको कहीं नहीं देख रहे हैं!" सही चीज है, ईसा जहाँ पैदा हुआ, वहाँ वह दिखाई नहीं दे रहा है और बुद्ध जहाँ पैदा हुआ, वहाँ वह कम-से-कम पचीस सौ साल तक तो नहीं दिखाई दिया। तो उन्होंने जो यह कहा कि हमें यहाँ गांधी नहीं दिखाई दे रहा है, यह बात सही है। सही इसलिए है कि हमने गांधी के औजार को, उसके हथियार को माना था—गांधी को नहीं। वह

औजार और हथियार जब बगैर गांधी के हो जाता है, तो क्या होता है ? जब श्रीकृष्ण के बगैर अर्जुन हो गया, तब उसे भीलों ने लूट लिया। श्रीकृष्ण का सखा वही अर्जुन था, उसके पास वही गांडीव था, लेकिन उसे भीलों ने लूट लिया। तब लोगों ने शंका की कि महाभारत के विजेता विश्वविजयी धनंजय को इन भीलों ने क्यों लूट लिया ? इसका उत्तर यह है कि तब उसके पास योगेश्वर था। वह योगेश्वर कहाँ है ? अब केवल यह धनुर्धर रह गया है। इसी तरह हमारे पास सत्याग्रह है, हमारे पास असहयोग है, हमारे पास उपवास हैं, हमारे पास हड़ताल है—सारे हथियार हैं। "सत्याग्रह" भी है, लेकिन उसमें से 'सत्य' गायब है। आग्रह ही आग्रह रह गया है, सत्य तिरोहित हो गया है। जिसकी निष्ठा सत्य में थी, वह नहीं रहा। फिर हम यह कहते हैं कि गांधी यही चाहता था। गांधी ने एक दफा कहा था कि 'आप लोग ये मेरी पुस्तकें और हरिजन, यंग-इंडिया और नवजीवन की फाइलें मेरे साथ जला दें।' गांधी-सेवा-संघ की परिषद् में बहुत वेदना के साथ उन्होंने यह बात कही थी। 'इन्हें इसलिए जला दो कि अगर ये मेरे बाद रह जायँगी तो लोग एक दूसरे पर इन्हींको फेंककर मारेंगे। ये ही आपके हथियार बन जायँगे। आपमें से हरएक कहेगा कि मैं जो कह रहा हूँ, यही गांधी चाहता था। मैं जो कह रहा हूँ, यही गांधी का सही विचार है।'

निष्पक्ष पुरुषों से परस्पर प्रामाण्य

आज हम कुछ संत के बाद रहनेवाले, उसके अनुयायियों की परिस्थिति में आ गये हैं। मराठी में उनके लिए बहुत अच्छा

शब्द है "संताळचा"। इसका अनुवाद हिंदी में नहीं हो सकता। संत के साथ रहनेवाला व्यक्ति संताळचा कहलाता है। संत में अगर तेजस्विता होती है, तो उसमें दाहकता होती है। सूर्य में प्रकाश और तेजस्विता होती है, तो रेत में दाहकता होती है। रेत जलाती है। उसकी दाहकता मनुष्य सह नहीं सकता। यह सब होते हुए भी, यद्यपि संत जैसी तटस्थता मनुष्य में असंभव है, फिर भी निष्पक्ष भाव बिल्कुल संभव है। जिसमें उत्कटता होगी, जिसमें स्नेह होगा, वह व्यक्ति तटस्थ न रहने पर भी निष्पक्ष रह सकता है। इस देश में आज कुछ ऐसे नागरिकों की आवश्यकता है, जो तटस्थ न रहने पर भी निष्पक्ष रह सकें। तब हम इस देश में परस्पर प्रामाण्य स्थापित कर सकेंगे।

गांधी पर उसके प्रतिपक्षी का विश्वास भी

आज तक इस देश में राजनीति के क्षेत्र में एक ही पुरुष ऐसा हुआ, जिसका भरोसा उसका प्रतिपक्षी भी कर सकता था। मेरा यह दावा नहीं है कि गांधी ने अपने प्रतिपक्षी का प्रेम प्राप्त किया था। अगर वह यह कर सकता तो उसकी भाषा में, ~~उसने कहा कि~~ "मैं नाचता, ~~अगर कर सकता~~ तो।" लेकिन प्रेम प्राप्त नहीं कर सका, पर विश्वास कर लिया। उन लोगों ने गांधी को बेवकूफ कहा। जब उसने असहयोग आंदोलन शुरू किया, तब लार्ड रीडिंग ने कहा : It's the most foolish of ~~the~~ foolish ~~things~~—दुनिया की बेवकूफी तजवीजों में सबसे अधिक बेवकूफी की तजवीज यह है। तो किसीने उसे बेवकूफ कहा, किसीने बुद्धू कहा, किसीने भोला कहा, किसीने सनकी कहा, ~~कमटी~~ कहा, आग्रही कहा, जिद्दी कहा, हठीला कहा। लेकिन किसीने उसे

बेइमान, मक्कार, फरेबी नहीं कहा। इसका नाम वातावरण है। यह तो उसने अंग्रेजों के लिए किया।

क्या इस देश के हर प्रांत में, हर संप्रदाय में मुठ्ठीभर व्यक्ति ऐसे नहीं हो सकते, जो एक-दूसरे का भरोसा कर सकें और जिनकी निष्पक्षता का भरोसा सारे लोग कर सकें? इसकी बहुत आवश्यकता है। पंजाब में सिक्खों और हिंदुओं में पंजाबी सूबे को लेकर झगड़ा होने पर न्यायाधीश तीसरा होगा। असमिया और बंगाली का झगड़ा हो तो न्यायाधीश तीसरा होगा। कर्नाटक और महाराष्ट्र का झगड़ा हो, तो न्यायाधीश तीसरा होगा। एक जगह की पुलिस दूसरी जगह नहीं चलेगी। एक भाषा बोलनेवाली पुलिस दूसरी भाषावाले प्रांत में नहीं चलेगी। पर यह फौज कब तक चलेगी? आखिर मन में प्रांतीयता और भाषावाद का ही तो डर है न? अब यह अविश्वास नौकरियों तक पहुँच गया है। विद्यामंदिरों के मंदिर में—विश्वविद्यालयों और विद्यापीठों में भी इसकी कोई सीमा नहीं रही है। पंडित जितना एक दूसरे का विश्वास करते हैं, उतना दुनिया में और कोई नहीं कर सकता। उनकी यह विशेषता है। "विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परपीडनाय।" सब जगह यह अविश्वास का कल्मष फैल गया है। इसमें से विश्वास का वातावरण कौन पैदा करेगा?

मानव का जीवनदायी तत्त्व : स्नेह

विश्वास का यह वातावरण सत्ता, संपत्ति और शस्त्र स्थापित नहीं कर सकते; क्योंकि ये तीनों के तीनों व्यवच्छेदक हैं, मनुष्य को मनुष्य से अलग करनेवाले हैं। दो मनुष्यों के बीच जहाँ सत्ता, संपत्ति और शस्त्र आता है, वहाँ वह मनुष्यों को तोड़ता है,

जोड़ता नहीं। मनुष्यों को जोड़नेवाली शक्ति एक ही है और वह है स्नेह–जो हमारे जीवन का द्रव्य है, उपादान है। मनुष्य का जीवन जिस द्रव्य का बना हुआ है, उस द्रव्य का नाम है स्नेह। और कोई दूसरा द्रव्य उसका उपादान नहीं है। यही उसका जीवनदायी तत्त्व है। यही उसे मृत्यु के भय से बचा सकता है। इस महापुरुष ने, जो संयोग से हमारे देश में पैदा हुआ, सारे देश में सद्भाव, सौहार्द और स्नेह का वातावरण बनाने की कोशिश की। उसका अलख जगाया। पाकिस्तान बन जाने के बाद भी मुसलमानों के बीच दौड़ा। पाकिस्तान बनने से पहले अस्पृश्यों के बीच गया। वह अपने व्यक्तिगत जीवन में सोचने लगा, प्रयोग करने लगा कि क्या दुनिया के अंत तक यही परिस्थिति रहेगी कि स्त्री के शरीर से पुरुष को भय होगा और पुरुष के शरीर से स्त्री को भय होगा? क्या इनका सह-जीवन कभी पवित्र और निरापद हो ही नहीं सकेगा? सोचने पर लगता है कि ऐसा सुनहला सपना दुनिया में बहुत कम लोगों ने देखा होगा। ऐसा दिव्य स्वप्न देखने का सौभाग्य सबको प्राप्त नहीं होता। उसके लिए एक अलग तरह के दिल और दिमाग की जरूरत होती है। ऐसा महापुरुष, ऐसी विभूति हमारे बीच आयी थी, आज वह नहीं रही। पर हम तो शरीर-परायण हैं। उसकी आत्मा कहीं होगी, इस देश के वातावरण में भी कहीं विचरण करती होगी, हम नहीं जानते। अव्यक्त आत्मा का न प्रत्यय है, न अनुभव। शरीर को ही देखा है, शरीर को ही पहचाना है, शरीर से ही प्रेम किया है। वह मनुष्य हमारे बीच से उठ गया। लेकिन उसकी कौन-सी विरासत आज हमारे पास है?

एक तो उसने हमें यह सिखाना चाहा था कि साधारण मनुष्य के पास एक ही शक्ति है और वह यह कि वह मृत्यु से न डरे! दूसरी बात हमें यह सिखायो कि अगर मनुष्य को मनुष्य से मिलाना चाहते हो, जोड़ना चाहते हो, तोड़ना नहीं चाहते, तो मनुष्य और मनुष्य के बीच कभी शस्त्र और सत्ता को मत आने दो। दो मनुष्यों के बीच शस्त्र तो हो ही नहीं और सत्ता भी कम-से-कम हो ~~: That governs the least.~~ सत्ता का अंश भी जितना कम होता चला जाय, उतना अच्छा है। इसे ही विनोबा दूसरे शब्दों में कहता है कि 'लोकशक्ति का विकास करो।' भाषा दूसरी है, भिन्न है, लेकिन विरासत वही है।

मणि-भवन,
बंबई ३०-१-'६१

सज्जनता और वीरता का संरक्षण : ४ :

इस देश में मुख्य-मुख्य जलाशयों में गांधी के शरीर की भस्म प्रवाहित की गयी थी। उस वक्त शायद हम लोगों ने सोचा होगा कि अब इस देश के लोग जो पानी पीयेंगे, उसमें गांधी की कुछ तासीर होगी। हममें से प्रायः सबने बच्चों या बूढ़ों को आपस में लड़ते समय यह कहते सुना होगा कि 'हम भी अपनी माँ का दूध पिये हुए हैं।' इस तरह इस देश का मनुष्य दुनिया के सामने खड़ा होकर यह कह सकता है कि मैंने वह पानी पिया है, जिसमें गांधी की भस्म प्रवाहित की गयी थी। अगर हम यह नहीं कह सकते, तो हमारे लिए यह सोचने का विषय है। यह विचार आज इस देश के अन्य लोगों के लिए जितना प्रस्तुत हैं, उससे कहीं अधिक हम लोगों के के लिए प्रस्तुत है, जो यह दावा करते हैं कि हम गांधी के विचारों को समझते हैं और उस पर चलने की कोशिश करते हैं।

अपराधों को प्रकट करने की शक्ति का अभाव

गांधी ने पहली बात हमें सिखायी, वह यह है कि हम देश में सत्ता, संपत्ति और शस्त्र इन तीनों से निरपेक्ष पुरुषार्थ का विकास करें। क्या इसका विकास हम अपने में कर सके हैं ? पेशवाओं के जमाने में एक रामशास्त्री प्रभुणे न्यायाधीश था। उसकी न्यायाधीशता में राघोबा ने अपने भतीजे का खून किया, ~~जो कि पेशवा था। पेशवा की पत्नी~~ ने ~~उनसे~~ पूछा कि प्रत्यक्ष पेशवा ने खून किया है, अब तुम क्या करना चाहते हो ? रामशास्त्री ने

कहा कि न्यायासन पर बैठकर मैं एक ही चीज सीखा हूँ कि इस राज्य में जो कोई दूसरे का खून करेगा, उसे 'देहान्त प्रायश्चित्त' करना चाहिए। रानी ने दुबारा, तिबारा वही सवाल पूछा और उन्होंने बार-बार देहान्त प्रायश्चित्त की ही बात कही। रानी ने कहा कि क्या तुम जानते हो कि हम तुम्हारी जीभ काट सकते हैं? तुम्हारे शरीर की बोटी-बोटी काट सकते है? तुम्हे कालकोठरी में बंद कर सकते हैं? रामशास्त्री ने जवाब दिया कि प्राणों के मोह के कारण मेरे मुँह से कोई कमजोरी का शब्द निकलने से पहले यह अच्छा होगा कि आप इस जीभ को कटवा लें।

क्या हममें सत्ता और शस्त्रधारी के सामने इस प्रकार की सत्यनिष्ठा का आचरण और उच्चारण करने की शक्ति है? सत्ता ~~का मतलब~~ सरकार, म्युनिसिपैलिटी, यूनिवर्सिटी आदि नहीं है, बल्कि अन्याय के खिलाफ अपनी आवाज उठाना है। क्या विद्यार्थियों में यह शक्ति है कि विद्यार्थियों की ज्यादती के खिलाफ वे अपनी आवाज उठा सकें? क्या हमारे कार्यकर्ताओं में यह शक्ति है कि हमारे अपने जीवन में जो असत्याचरण, लोभ और मोह है, उसका उच्चारण हम कर सकें? रामशास्त्री ने पेशवाओं के दरबार में सत्य का उच्चारण किया था। गांधीजी ने लोगों के दरबार में अपने पापों का उच्चारण किया और घर की आलमारी में चार रुपये निकलने पर उस बूढ़े ने अखबार में लिख दिया कि 'मैं अपरिग्रही हूँ, मेरे लिए यह लज्जा का विषय है कि मेरी पत्नी ने चार रुपये रख लिये।' क्या हम लोगों ने इस तरह अपनी गलतियों, कमजोरियों और बेईमानियों का उच्चारण अपने मित्रों और सहयोगियों के सामने किया है?

आशा का केन्द्र : गांधी-परायण समुदाय

आज के जमाने में दो पार्टियाँ क्रांतिकारी मानी जाती हैं। एक कम्युनिस्ट पार्टी और दूसरी पार्टी नहीं, बल्कि समुदाय है, जिसे हम 'गांधी-परायण व्यक्तियों का समुदाय' कहते हैं। गांधी-निष्ठ व्यक्तियों के समुदाय में केवल इस देश के लोगों का ही नहीं, दुनिया के लोगों का भी समावेश होता है, क्योंकि दुनिया के लोग संपत्ति से अघा गये हैं। उनके पास इतनी संपत्ति है कि अब वे उसे बाँटने लगे हैं। दुनिया के लोग सत्ता से ऊब गये हैं और शस्त्रास्त्रों से भयभीत हो गये हैं। हमारे देश में अभी भूख और बेकारी है। इसलिए यहाँ वैभव की लोलुपता भी है।

हम अपने यहाँ सत्ता की आकांक्षा का नंगा नाच देख रहे हैं। ग्राम-पंचायत में सत्ता चाहिए, जिला-परिषद् और म्युनिसिपैलिटी में सत्ता चाहिए, कांग्रेस-कमेटी, पी० एस० पी० की कमेटी में सत्ता चाहिए और अन्त में लोक-सेवकों के क्षेत्र में भी विवेदक बनना चाहिए, सर्वोदय-मण्डल में भी सत्ता चाहिए। हमारे यहाँ गद्दी के लिए सिर्फ राजाओं में ही झगड़ा नहीं हुआ है, शंकराचार्य की गद्दी के लिए भी झगड़े हुए हैं। सिर्फ दो मंत्रियों में ही आपस में झगड़ा नहीं होता, दो पुजारियों में भी होता है। पर जब इस तरह के झगड़े राज्य और युद्ध का क्षेत्र छोड़कर धर्म के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, तब कोई आशा नहीं रहती।

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं पुण्यक्षेत्रे विनश्यति।
पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति॥

दूसरी जगह पाप करने पर काशी में धो सकते हैं, लेकिन

काशी में किये गये पाप को कहाँ धोयेंगे ? सत्ता, संपत्ति और शस्त्र का उन्माद संघर्ष पैदा करता है। संघर्ष की प्रतियोगी मनोवृत्ति बाजार में, लड़ाई में और दरबार में है। वह अगर कहीं इन गांधीवालों के क्षेत्र में आ गयी, तो फिर यह ठीक-तरह समझ लेना चाहिए कि दुनिया के लिए कोई आशा नहीं रहेगी।

शक्ति के स्रोत : गांधीजी के गुण

अपने को लोकसेवक या शान्ति-सैनिक कहनेवाले लोगों ने क्या कभी अपना दिल टटोला है ? उन्होंने क्या कभी इसका विचार किया है कि आखिर इस देश की यह परिस्थिति क्यों है ? यहाँ भूख है। यह न समझना चाहिए कि यह संयमी लोगों का देश है। अमरीका के आदमी को डकार लेते हुए सुनकर यहाँ के भूखे की आत्मा कराह उठती है। यही हाल शस्त्र का है। उन लोगों के पास इतने शस्त्र हो गये हैं कि इधर तो लड़ाई के लिए वे शस्त्र बढ़ा रहे हैं; लेकिन उधर शस्त्रों से तंग आ गये हैं, भयभीत हो गये हैं। लेकिन हमारे यहाँ हम एक दूसरे से इतने भयभीत हैं कि शस्त्रों के सिवा हमें कोई दूसरा आधार ही नहीं मालूम हो रहा है। हमें पाकिस्तान और चीन का डर मालूम होता है। यह तो अलग, लेकिन इस देश में एक प्रांत दूसरे प्रांत से डर रहा है, उसके लिए क्या कहा जाय ?

इसका प्रतिबिंब हम अपने भीतर देखें। हम मुट्ठीभर हैं, लेकिन अगर मुट्ठीभर आदमियों में सिफत हो, गुण हो तो मुट्ठीभर आदमी दुनिया के लिए भारी हो सकते हैं। हममें कौन-सा गुण हो सकता है ? जिन्होंने सत्ता, संपत्ति और शस्त्र

तीनों छोड़ दिये। सत्ता से हम दूर रहते हैं, संपत्ति हमारे पास है ही नहीं और हथियार हमारे पास पहले भी नहीं थे और अब भी नहीं हैं। अब हमारे पास ऐसी कौन-सी ताकत है, जिसके भरोसे हम इस देश में क्रांति करना चाहते हैं? गांधीजी के गुणों के सिवा और कोई ताकत हमारे पास आज नहीं है।

अहिंसक शक्ति अविकसित क्यों?

सरकार गांधीजी का नाम लेकर बिलकुल दूसरे रास्ते जा रही है। हम गांधीजी का नाम लेकर किसी भी रास्ते से नहीं जा रहे हैं। गांधीजी के जीते जी इस देश में उतने सत्याग्रह कभी नहीं हुए, जितने अब हर हफ्ते हो रहे हैं। कोई कह सकता है कि इसमें बुराई क्या है? मैं उसकी निन्दा नहीं करता, बल्कि यह सवाल पूछता हूँ कि जिस देश में इतने सत्याग्रह होते हैं, उस देश में अहिंसा की शक्ति का आविष्कार क्यों नहीं हो रहा है? हर सप्ताह सत्याग्रह होने के बाद भी लोग कहें कि अहिंसा अव्यवहार्य है, तो यह बात कुछ समझ में नहीं आती। यदि लोग ऐसा करते कि अहिंसा अव्यवहार्य होने के कारण गांधीजी के बाद अब इस देश में सत्याग्रह नहीं होंगे, मार-पीट नहीं होगी, तो हम समझ सकते। लेकिन कम्युनिस्टों से लेकर रामराज्य-परिषद् तक सब सत्याग्रह ही करते हैं और सबका दावा है कि हम अहिंसात्मक सत्याग्रह करते हैं। इसके बाद भी अहिंसा की शक्ति विकसित क्यों नहीं हो रही है? जनता में अहिंसा का प्रत्यय क्यों नहीं आ रहा है? पहली लड़ाई के समय ~~एक गीत गाया जाता था~~ : 'कदम जर्मन के बढ़ते हैं, फतह सरकार की होती है।' इसी तरह यहाँ रोज गोली चले, मारपीट

हो और दुहाई अहिंसा की हो, जय अहिंसा की बोली जाती हो, तो हमें सोचना चाहिए कि अहिंसात्मक प्रतीकार के जगह-जगह इतने प्रयोग होने पर भी अहिंसात्मक वीरता का प्रत्यय क्यों नहीं होता ?

आज इस देश में इतने सत्याग्रह होते हैं कि एक विनोबा को छोड़कर अन्य सब सत्याग्रह कर रहे हैं। वे यह भी कहते हैं कि विनोबा को भी सत्याग्रह करना चाहिए। पर विनोबा कहते हैं कि मैं तुम जैसा करूँ, तो तुम ही बनूँगा। तुम तो कर ही रहे हो। मेरी अपेक्षा तुममें कौन-सी कमी है ? क्या वीरता और देशभक्ति में कोई कमी है ? फिर कौन-सा गुण ऐसा है, जो तुममें नहीं और मुझमें है ? फिर मेरे करने से क्या होगा ? अगर मेरे करने से होगा, तो इसीलिए होगा कि मैं अपनी समझ से काम करूँगा और उस अपनी समझ में भगवान् के आदेश का मुख्य अंश है। अतः मेरे करने से होगा तो भगवान् का होगा।

यह जीवन-समर्पण की बुद्धि जिस राष्ट्र में नहीं है, उसमें आत्मप्रत्यय पैदा नहीं होगा।

पठानकोट में सर्व-सेवा-संघ ने जब संविधान के क्षेत्र में पदार्पण किया, तब मैंने कहा था कि यह असिधारा का क्षेत्र है। 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया।' जैसा क्षेत्र है। हमने एक नृत्याचार्य का नृत्य देखा था। उन्होंने अपने पाँवों में चूना लगाकर तलवार की धार पर नृत्य किया। उनके पैरों का चूना तलवार को लगा, लेकिन पैर नहीं कटे। संविधान-क्षेत्र में अगर आप यह कमाल कर दिखायेंगे, तो आपका ठीक चलेगा। नहीं तो यह तलवार आपके पैर काटनेवाली है। संविधान का क्षेत्र

अनोखा नहीं है। जो चुनाव और संविधान का क्षेत्र नहीं है, वह सुरक्षित है। लेकिन हमने यह कुछ खतरे का क्षेत्र जान-बूझकर अपनाया है। इस क्षेत्र में हमे सोच-समझकर चलना चाहिए। क्या हम इस क्षेत्र में गांधीजी की-सी समर्पण-वृत्ति दाखिल कर सकेंगे? अगर हमने वह कर दिया, तो मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि मुट्ठीभर आदमी इस देश को उबार नहीं सके, तो भी कम-से-कम वे उसमें निहित सज्जनता और वीरता के बीजों का संरक्षण कर सकेंगे, जो एक बहुत बड़ी बात होगी।

बंबई
१२-२-'६१

गांधी का सच्चा स्मारक : ५ :

आज हम सब लोग महात्मा गांधी का स्मरण करने के लिए यहाँ इकट्ठे हुए हैं। अब इस राष्ट्र में लोग गांधी की याद तब करते हैं, जब कि उसका नाम बेचना होता है। आजकल तो व्यापार के लिए या राजनीति में सत्ता प्राप्त करने के लिए या लोगों में यश और कीर्ति प्राप्त करने के लिए गांधी का नाम बेचा जा सकता है।

गांधी-सिद्धान्त की परीक्षा का अवसर

आज इस प्रश्न का महत्त्व इसलिए अधिक है कि जिस स्वतंत्रता के लिए गांधी ने आमरण प्रयत्न किया और जिस सिद्धान्त के लिए उन्होंने अपना बलिदान भी दिया, उस सिद्धान्त की परीक्षा का अवसर हमारे देश में और दुनिया के अन्य देशों में बहुत निकट आ गया है। भारतवर्ष की स्वतंत्रता का संरक्षण क्या जवाहरलालजी करेंगे? क्या उनकी सेना करेगी? क्या सरकार के कर्मचारी करेंगे? आज तक दुनिया के किसी भी देश की स्वतन्त्रता का संरक्षण क्या उसकी सेना ने कभी किया है? अगर लोगों को उसकी चिन्ता नहीं हो, तो कौन-सा देश कब स्वतन्त्र रह सका है?

आजादी से आराम अधिक पसंद

जिस देश के लोगों को स्वतन्त्रता से सुख की कीमत अधिक मालूम होती है, क्या वह देश कभी स्वतंत्र रह सका है? क्या

दुनिया में कोई ऐसा देश है, जिसने आराम को आजादी से ज्यादा पसन्द किया हो और उसके बाद भी वह आजाद रह सका हो ? सन् १९३९ के महायुद्ध में हिटलर की पहली चोट खाते ही फ्रांस तबाह हो गया था। उसका कारण यह बतलाया गया कि फ्रांसीसी लोग विलासप्रिय हो गये हैं, आराम-पसन्द हो गये हैं। वे आजादी से आराम को ज्यादा पसंद करते हैं, इसलिए हिटलर के सामने दो रोज भी नहीं ठहर सके। भारतवर्ष १४ वर्ष में ही आजादी से ऊबने लगा है। कुछ लोग कहते हैं कि स्वतंत्रता नहीं चाहिए और अधिकतर लोग कहते हैं, चाहे स्वतंत्रता भले ही रहे लेकिन कम से कम लोक-राज्य न रहे। आज हमें गम्भीरतापूर्वक इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए। अन्यथा आज तक जैसे बहुत-से बलिदान हुए, उनमें गांधी का भी एक बलिदान शामिल हो जायगा और दूसरे लोग जैसे इतिहास में जमा हो गये, वैसे ही गांधी भी इतिहास में जमा हो जायगा। वह इस देश में जीवित नहीं रह सकेगा।

एक बहुत बड़े विचारक ने मुझसे एक सवाल किया, जिसका उत्तर मैं नहीं दे सका। उन्होंने कहा : 'रूस का एक मन है, चीन की एक तबीयत है तथा अमेरिका और इंगलैण्ड की भी एक प्रकृति है, इसे हम जानते हैं। इसी तरह क्या भारतवर्ष का भी अपना कोई मन है ? क्या उसकी भी अपनी कोई प्रकृति है ? क्या उसका भी किसी तरफ कोई झुकाव है ? क्या आप मुझे इसे बता सकेंगे ?' मैं इतिहास और पुराण की बातें करने लगा। इस पर वे भाई कहने लगे : 'इतिहास और पुराण की बातें जाने दीजिये ! मैं तो आज की बात कर रहा हूँ। आज

के अमेरिका, आज के चीन, आज के यूरोप, इन सबकी बात कर रहा हूँ---उसने यह सब अभिमानपूर्वक कहा, क्योंकि वह यूरोप का था---अब सारा यूरोप एक हो रहा है। अब तो हम लोगों ने अपना बाजार भी एक कर लिया है। लोग यह मानते थे कि हम व्यापारी हैं, पैसे के लोभी हैं। इनका मोह कभी नहीं जायगा। इसके बावजूद अब हमारा बाजार भी एक हो गया है।'

सबसे ज्यादा स्पर्धा, प्रतियोगिता अगर कहीं रहती है, तो बाजार में रहती है। यूरोप में अब वह दिन आ गया है, जब कि दूकानदारी राष्ट्रीय पैमाने पर खतम हो रही है। गांधी ने खादी में दूकानदारी खतम करने की कोशिश की। जवाहरलालजी सहकारी-समितियाँ कायम करके दूकानदारी खतम करने की कोशिश कर रहे हैं। प्रजा समाजवादी, समाजवादी, कम्युनिस्ट आदि देश की सभी पार्टियाँ इस कोशिश में हैं कि दूकानदारी खतम हो। यूरोप में राष्ट्रीय पैमाने पर बाजार एक करने की कोशिश हो रही है, राष्ट्रीय पैमाने पर दूकानदारी खतम हो रही है। यूरोप को 'महाद्वीप' कहते हैं, उसकी एकता की तरफ उनका कदम बढ़ रहा है। पर भारतवर्ष को हम एक देश कहते हैं, उसकी एकता हम स्थापित नहीं कर सके।

आजादी की भावना का अभाव

भारतवर्ष को यूरोप से बहुत-सी चीजें लेनी हैं। लेते भी आये हैं। मेरे जो बाल कटे हुए हैं, वे यूरोपीय ढंग के हैं। सड़कें यूरोपीय ढंग से बनी हैं। मकान यूरोपीय ढंग से बने हैं। हमारी रेलगाड़ियाँ, मोटरें, हवाई जहाज

सब कुछ यूरोपीय ढंग के बने हैं। इन सब चीजों को तो हमने यूरोप से ले लिया, लेकिन हमने उनसे आजादी की तबीयत नहीं ली। असली लेने योग्य स्वतंत्रता और एकता ली ही नहीं। यों तो वे हमसे कहीं ज्यादा झगड़ालू हैं। आज तक जितनी बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ हुईं, उनकी जमीन पर ही हुई हैं। यह सब होते हुए भी एक बात उन लोगों ने सीखी है कि अब इस वैज्ञानिक-युग में कोई राष्ट्र अलग-अलग नहीं रह सकता। या तो सब एक हो जायँगे, या फिर सब-के-सब मरेंगे। भारतवर्ष अभी यूरोप से इस सबक को नहीं सीख सका।

गांधी राष्ट्र-पिता हैं। किसके राष्ट्रपिता हैं? गुजरातियों के हैं, बंगालियों के हैं, महाराष्ट्रियों के हैं, किसके नहीं हैं? जिस राष्ट्र का वह पिता है, वह राष्ट्र है कहाँ?

अखिल भारतीय नेताओं का अनुदय

सुभाषचन्द्र बोस का उत्सव बंगाली करते हैं। सरदार वल्लभभाई की जयन्ती गुजराती मनाते हैं। एकनाथ की महाराष्ट्र में होती है। इस देश के इतिहास में अंग्रेजों के आने से पहले कभी कोई अखिल भारतीय पुरुष रहा ही नहीं। पहले के इतिहास में तो कभी कोई रहा ही नहीं था। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि को छोड़ दीजिये। ये सब ऐतिहासिक पुरुष नहीं, पौराणिक ~~पुरुष माने जाते~~ हैं। भारतवर्ष में कोई पुरुष ऐसा नहीं हुआ, जिसको सारे भारत ने माना हो। केवल अंग्रेजों के जमाने से ही कुछ अखिल भारतीय नेता हुए। जब हम गुलाम थे, तब अखिल भारतीय नेता थे। पर जब से हम स्वतंत्र

हुए, हमारी बदकिस्मती से जो अखिल भारतीय नेता बन गये सो बन गये, लेकिन हमने उन्हें पैदा नहीं होने दिया।

देश का क्या कोई मन भी है ?

इस बात की ओर गम्भीरतापूर्वक इसलिए संकेत कर रहा हूँ कि अब जितने प्रांतीय दंगे होते हैं, उनमें जितने अत्याचार होते हैं, वे पुराने पौराणिक अत्याचारों से भी अधिक भीषण हो रहे हैं। एक मित्र से मैंने कहा : "दुनिया की बहुत उन्नति हो गयी है।" उसने पूछा : "कैसे ?" मैंने कहा : "धर्मराज का ~~सगा भाई~~ भीम दुश्शासन का खून पी सकता है। क्या आप आज इसकी कल्पना कर सकते हैं कि धर्मराज जैसे व्यक्ति का भाई हो और वह खून पीता हो ? राम का भाई लक्ष्मण एक स्त्री का नाक-कान काट ले ?" उसने जवाब दिया : "कांगो में जो अत्याचार हो रहे हैं, रूस में गैर कम्युनिस्टों पर या अपने से भिन्न विचारवाले लोगों के साथ जो व्यवहार होता है, वह भीम और लक्ष्मण के व्यवहार से क्या कम बर्बरतापूर्ण है ?"

यहाँ धर्म के नाम पर स्त्रियों पर बलात्कार किया गया, भाषा के नाम पर स्त्रियों का अपमान किया गया है ! भिन्न-भाषी और भिन्न-धर्मी स्त्रियों के साथ धर्म और संस्कृति के नाम पर जिस देश में यह किया जा सकता है, उस देश का क्या कोई भारतीय मन भी है ? अगर है, तो इन अत्याचारों के लिए वहीं क्यों धिक्कार नहीं होता ? किसीको जबान क्यों नहीं खुलती। हरएक किससे पूछता है ? विनोबा, ~~दादा धर्माधिकारी~~ या जयप्रकाश बाबू से। पर आप क्यों नहीं कुछ कर रहे हैं ? क्या इस देश में और कोई सज्जन है ही नहीं ? क्या और सबने यह

मान लिया कि इस प्रकार के अत्याचार हो सकते हैं। यह निश्चित है कि एक बार इस प्रकार के अत्याचारों की रीति चल पड़ेगी, तो वह कभी नहीं रुकेगी। मजदूर-मालिकों में ये अत्याचार होंगे, धार्मिक और साम्प्रदायिक दंगे में भी ये अत्याचार होंगे और आये दिन चुनावों के दंगों में भी इस प्रकार के अत्याचार होने लगेंगे।

सभी नागरिकों के लिए दो मर्यादाएँ

पार्टियों के कुछ लोगों ने मिलकर एक आचार-संहिता बना ली। उसे बनाते समय नागरिक कहींका नहीं था। क्या जो प्रतिनिधि है, उसीके लिए सदाचार की मर्यादा है और जो मत देनेवाला है उसकी कोई नहीं? चुनाव में खड़े होनेवाले कहते हैं कि वोट मत खरीदो। पर वोटर स्वयं एक-दूसरे से क्यों नहीं कहते कि वोट मत बेचो? चुनावों में खड़े होनेवाले से आप कहते हैं कि लोगों को सवारियों में मत ले जाओ। लेकिन मत देने जानेवालों से आप क्यों नहीं कहते कि जाना हो, तो अपनी सवारी से जाओ, अन्यथा पैदल जाओ, जैसा कि विश्वनाथजी का दर्शन करने लोग पैदल जाते हैं। यह जब तक नहीं होगा, तब तक इस देश में साधारण नागरिक के लिए कोई राष्ट्रीय जीवन नहीं रह जानेवाला है।

सर्व-सेवा-संघ हो या नागरिकों का दूसरा कोई वर्ग या कोई समूह, सबका कर्तव्य हो जाता है कि सारे नागरिकों को दो बातें समझायें। एक तो यह कि जो अपना वोट लालच और भय के कारण बेचता ~~मालो देता~~ है, उसकी स्वतंत्रता का संरक्षण

विधाता भी नहीं कर सकता, फौज और पुलिस तो कर ही नहीं सकती। यह उन्हें समझाना चाहिए, जो किसी पार्टी में नहीं हैं और न स्वयं उम्मीदवार ही हैं। दूसरी चीज यह समझानी चाहिए कि चाहे जितने झगड़े हों, सबमें एक मर्यादा रहेगी। झगड़ों में सबसे पहली मर्यादा (जैसी चुनाव के लिए कहा है कि उसमें छोटे बच्चों का उपयोग नहीं किया जायगा) यह होगी कि स्त्रियों का अपमान नहीं होगा, बच्चों पर अत्याचार नहीं होगा। दूसरी मर्यादा यह कि किसी भी झगड़े में मार-पीट और हिंसा नहीं होगी। भीष्म ने कहा कि मैं कृष्ण भगवान् से शस्त्र-ग्रहण कराऊँगा। अब सवाल यह था कि इस प्रतिज्ञा की पूर्ति कैसे हो? इसके लिए दो ही विकल्प थे : या तो पाण्डवों का नाश या उनकी खुद की मृत्यु। उन्होंने कहा कि मेरी मर्यादा है। मैं वीर पुरुष हूँ। मेरे सामने अगर तुम किसी नपुंसक को खड़ा कर दोगे, तो मैं हथियार नहीं उठाऊँगा, फिर चाहे वह मेरी गर्दन काट ले। तब शिखंडी को उनके सामने खड़ा करके अर्जुन ने उसकी आड़ में बाण मारे। उन्होंने कहा : "मैं जानता हूँ कि अर्जुन बाण मार रहा है, पर मेरे सामने शिखंडी नपुंसक होने से मैं हाथ नहीं उठाऊँगा।"

एक सभ्य पुरुषों का झगड़ा होता है और एक असभ्य पुरुषों का। हमने जिन्हें भौतिकवादी या विलासप्रिय कहा, उनके किसी शहर में ऐसे झगड़े नहीं होते, जैसे कि हमारे यहाँ होते हैं। इसके लिए शांति की एक प्रतिज्ञा निकाली गयी है, जिसे सारी पार्टियों ने पसन्द किया है तथा जो एक राष्ट्रीय प्रतिज्ञा है। देश में इस वक्त दस्तखत लेने का काम शुरू होगा। सारे

नागरिकों का यह काम है कि गांधी ने जिस एकता और मित्रता के लिए अपना बलिदान किया, उस एकता के लिए सारे ~~नागरिकों~~, विद्यार्थियों और शिक्षकों में झगड़ा हो तो हो, लेकिन हिंसा नहीं होगी। हिंसा का मतलब मारपीट ही नहीं, अपितु डराना और धमकाना भी है। इस देश में जितने झगड़े होते हैं, फिर चाहे किसानों के हों, सम्प्रदायों के हों, मजदूरों के हों, सबमें एक मर्यादा होनी चाहिए कि उनमें दो ~~काम~~ नहीं होंगे : लालच और भय। लोगों को खरीदना और उनको धमकाना असभ्यता ~~के काम~~ हैं। ये दो काम नहीं होने चाहिए।

आध्यात्मिकता का लोप

पश्चिम के लोगों ने यहाँ के लोगों से आकर पूछा : "यहाँ बड़े-बड़े महर्षि हुए हैं। विनोबा हैं, अरविन्द थे। इसी तरह शंकराचार्य आदि कई हो चुके हैं। महर्षियों के इस देश में, जिस आध्यात्मिक मूल्य के लिए आपका देश प्रसिद्ध है, उनका दर्शन हम कहाँ करें ?" लोगों ने कहा : "सारे भारतवर्ष में कीजिये।" दुबारा उन लोगों ने कहा : "हम सारा भारतवर्ष घूमकर आ रहे हैं। एक तरफ लोग कहते हैं, अन्न दो; दूसरी तरफ कहते हैं, हथियार दो। अमेरिका से हमें कर्जा चाहिए और पाकिस्तान को हथियार। इसके सिवा हमने और कोई माँग नहीं देखी। अब आप कौन-से अध्यात्म की बात कहते हैं ? हमने आपसे जो कुछ कहा, वह सब पूरा किया। यहाँ के लोगों के देखने के लिए हमारे यहाँ बहुत-सी चीजें हैं। हम आपको हवाई जहाज से उड़ा सकते हैं। एक मिनट में अणुबम का धड़ाका देख लीजिये। पर आपने जो-कुछ कहा, वह आपके यहाँ क्यों

दिखायी नहीं दे रहा है ? कम-से-कम हम तो कहीं नहीं देख रहे हैं ?" हमने कहा : "हम भूखे हैं, इसलिए ऐसा हो रहा है।" इस पर पश्चिमवालों ने कहा : "हम लोगों ने भौतिकता को अधिक महत्त्व दिया इसलिए ऐसे हो गये और आध्यात्मिकता ने आपको भिखारी बना दिया।" तो आप अच्छे हैं या हम ? पश्चिमवालों ने कहा कि "हमारे जड़वाद ने जब हमें अध्यात्म तक पहुँचाया तब हम आपसे वह सीखने आते हैं, पर आप कहते हैं कि हमें अन्न दो।"

देश के लिए चुनौती

अगर आप कहते हैं कि हथियार चलाना आवश्यक है, तो ऐसे जमाने में, जब कि खुश्चेव और कैनेडी कह रहे हैं कि हम हथियार फेंकना चाहते हैं; तो आध्यात्मिकता की तरफ कौन जा रहा है और कौन भौतिकता की तरफ ? क्या वे ऋषि-मुनि विलास में रहते थे, जिनको अध्यात्म का दर्शन हुआ था। यह इस देश के लिए चुनौती है। दुनिया में इस देश का नाम अगर किसीके कारण लिया जाता है, तो केवल गांधी के कारण। आज पश्चिम से कोई व्यक्ति अध्यात्म, नीति या अहिंसा सीखने भारत नहीं आता। हो सकता है कि प्रत्यक्ष व्यवहार में अहिंसा, अध्यात्म और नीति का प्रयोग पहले पश्चिम में हो और बाद में हमारे यहाँ।

अगर हम इस देश की एकता और अखण्डता को बनाये रखना चाहते हैं; इस देश की कोई एक संस्कृति थी, एक भारतीय मानस था, एक भारतीय हृदय था, उसे अगर आप अक्षुण्ण रखना चाहते हैं, तो देश के अन्दर जितने कलह-विग्रह

होते हैं, उन सबमें मर्यादा होनी चाहिए। इसके लिए नागरिक-जागरूकता की आवश्यकता है। आज इस देश का नागरिक तटस्थ ही नहीं, अपितु मृतवत्, ~~प्रेतवत्~~ हो गया है।

आज देश पर भयानक संकट आ रहे हैं, पर जनता मूर्छित-सी है। गांधी-युग को देखने के बाद हम और आप आज जो अर्ध-मूर्छित, अर्ध-सचेत हैं, सबसे मैंने प्रार्थना की है कि इन समस्याओं पर सोचें। इस देश में गांधी की स्मृति में यही सबसे बड़ा स्मारक है।

काशी
३०-१-'६२

गांधीजी विषयक साहित्य

महादेवभाई की डायरी (भाग १, २)	महादेवभाई	प्रत्येक ५.००
अन्तिम झाँकी	मनुबहन गांधी	१.५०
बापू के पत्र	काकासाहब	१.२५
अफ्रीका में गांधी	जोसेफ जे० डोक	१.००
गांधीजी और विश्व-शान्ति	देवदत्त शर्मा	०.६०
गांधीजी क्या चाहते थे ?	निर्मलकुमार वसु	०.५०
प्यारे बापू (तीन भाग)	एलेनी सेमियो	प्रत्येक ०.५०
गांधी : एक सामाजिक क्रान्तिकारी	विल्फ्रेड वेलॉक	०.३७
बापू के जीवन में प्रेम और श्रद्धा	मनुबहन गांधी	०.३०
बापू की गृह-माधुरी	,,	०.३०

सर्वोदय-विचार साहित्य

सर्वोदय-विचार और स्वराज्य-शास्त्र	विनोबा	१.२५
स्त्री शक्ति	,,	१.००
जय जगत्	,,	०.५०
समग्र ग्राम-सेवा की ओर (तीन खंड)	धीरेन्द्रभाई	६.००
समग्र नयी तालीम	,,	१.२५
सहजीवी गाँव : इजराइल का एक प्रयोग	युसुफ वरात्ज	३.००
विश्वशान्ति क्या सम्भव है ?	कैथलिन लान्सडेल	१.२५
अहिंसात्मक प्रतिरोध	सेसिल ई० हिनशा	०.५०
चीन-भारत संघर्ष		०.५०
लोक-स्वराज्य	जयप्रकाश नारायण	०.५०
लोकतान्त्रिक समाजवाद	अशोक मेहता	१.५०
लोकनीति	विनोबा	२.००
विदेशों में शान्ति के प्रयोग	मार्जरी साइक्स	०.७५

●

लेखक की अन्य कृतियाँ

सर्वोदय-दर्शन	३·००
अहिंसक क्रांति की प्रक्रिया	२·५०
स्त्री-पुरुष सहजीवन	१·५०
दादा की नजर से लोकनीति	०·५०
साम्ययोग की राह पर	०·२५
क्रांति का अगला कदम	०·२५
मानवीय क्रांति	०·२५
मानवीय निष्ठा	(प्रेस में)